E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
IJAAS 2019; 1(2): 200-202
Received: 21-08-2019
Accepted: 25-09-2019

डॉ. भारती निश्छल
गंगवारा, सारामोहनपुर, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. भारती निश्छल
गंगवारा, सारामोहनपुर, दरभंगा, बिहार, भारत

'सर्वंसहा' में अभिव्यक्त नारी विषयक विचार

डॉ. भारती निश्छल

सारांश
'सर्वंसहा' आत्मसंभाष शैली में रचित एक विचार–काव्य है, जिसमें पात्र और घटना–रूपी दो तीलियों के माध्यम से कथा को विचार–कथा का आकार दिया गया है। इसमें अर्थ, धर्म, राजनीति और चरित्र की तरह नारी के प्रति भी कवि की दृष्टि मुखरित हुई है।
कवि डॉ० पाठक के अनुसार, छोटे–बड़े, ब्राह्मण–शूद्र आदि भेदों की तरह स्त्री–पुरुष के प्रति भेद–दृष्टि भी सामन्ती व्यवस्था की देन है, सामाजिक व्यवस्था की उपज है। कृतयुग की महिला परवर्ती युगों में किस प्रकार अबला और दासी होती गयी, क्रय–विक्रय और हरण–वरण की पात्र बन गयी, इसका तर्कपूर्ण विवेचन कवि ने प्रस्तुत किया है। कवि की दृष्टि में पुरुष की तुलना में नारी हमेशा श्रेष्ठ रही है। पुरुष मैत्री की मर्यादा का भंजक रहा है, जबकि स्त्री मैत्री–स्थापन में मुख्य भूमिका निभाती रही है। पुरुष स्त्री पर संदेह और लांछल लगाता रहा है, जबकि स्त्री सहनशीलता की सीमा तक प्रतिवाद से प्रायः पृथक् रहती आयी है। कृति के अवलोकन से स्पष्ट है कि डॉ० पाठक की नारी–दृष्टि महात्मा गाँधी, विनोबा भावे और डॉ० राम मनोहर लोहिया के विचारों से प्रभावित और अनुप्राणित है।

प्रस्तावना
समसामयिक हिन्दी कविता में अतीत के पुनर्सर्जन के प्रतिभावान और समर्थ कवि डॉ० रमाकान्त पाठक ने अपनी अनेक काव्य पुस्तकों और उनकी भूमिकाओं के माध्यम से इतिहास के भीतर समकालीन सन्दर्भों और यगुबोध की तलाश और प्रतिष्ठा की है। आत्म संभाष–शैली में विरचित अपनी काव्य कृति 'सर्वंसहा' की भी प्रस्तुति यों तो उन्होंने मातृतर्पण के निमित्त की है, किन्तु वैचारिक दृष्टि से यह कृति भी डॉ0 पाठक की एक विचार कथा ही है। यह अलग बात है कि 'सर्वंसहा' में पात्र भी है और घटनाएँ भी, किन्तु संघटन की इन दो तीलियों ने जिस द्रव्य को घेरकर कथा का आकार दिया है, वह मुख्यतः विचार ही है।
धर्म, राजनीति, अर्थ, चरित्र आदि की तरह डॉ0 पाठक ने 'सर्वंसहा' में नारी के प्रति अपनी दृष्टि को भी प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया है। 'सर्वंसहा' में पाठकजी के नारी–विषय विचार भी उनके ग्रंथों में प्रखरतापूर्वक व्यक्त हुए हैं। उनके अनुसार, जिस प्रकार बड़े और छोटे का भेद, ब्राह्मण और शूद्र का भेद विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों की देन है, उसी प्रकार स्त्री–पुरुष का भेद भी सामाजिक व्यवस्था की ही देन है। नारी के प्रति सामंती व्यवस्था में हुए अन्यायों की भर्त्सना करते हुए डॉ० पाठक 'सर्वंसहा' में लिखते हैं :

> **''इसी तरह नर–नारी का भी भेद झूठ, अन्याय,**
> **धर्म–वृषभ क्या कर लेगा, धरती न रहे यदि गाय?**
> **नव्य–न्याय यह अनुमानों का, मात्र क्रूर अन्याय,**
> **नारी के प्रति दुर्जनता, नर की सज्जनता? हाय!**
> **मर्य्यादा–पुरुषोत्तम राम हुआ जब सीता–त्यागी,**
> **क्यों न फटी धरती कोशल की, जड़ता, हाय, अभागी!**
> **हिंसा का यह पुरुष–तन्त्र, हिंसा से हो निरूपाय,**
> **प्रभु–करूणा का शरणागत हो, खोजेगा जब न्याय–**
> **तब होगा नर पीछे, आगे आ जाएगी नारी–**
> **हिंस्र पुरुष से, सती अहिंसा जिसकी, कभी न हारी!** [1]

डॉ० पाठक ने पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को अनेक दृष्टियों से श्रेष्ठ बताया है, उसका 'सर्वंसहा' नाम भी इसी की ओर संकेतित करता है। कृत–युग की महिला परवर्ती युगों में क्रमशः किस प्रकार अबला और दासी होती गयी, क्रय–विक्रय और हरण–वरण की पात्र बन गयी, उसके सम्बन्ध में भी डॉ० पाठक के विचार अपूर्व हैं। इस सम्पूर्ण परिदृश्य को उपस्थित करते हुए डॉ० पाठक ने निम्नालिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत की हैं :

"कुछ नर द्विज, कुछ शुद्र, किन्तु द्विज सहज नारियाँ सारी।
एक पिता–गृह में, पति–गृह में जन्म दूसरा भारी–
पातीं वह, बारी–बारी से। किन्तु निरा उपहास–
यह द्विजत्व नारी का, बन–बनकर निरीह गृह–दास।
भूखी सोती आप, जुगाती बच्चों के हित बासी।
उसे बनाकर क्रय–विक्रय औ' हरण–वरण का पण्य–
हुआ पुरुष जो धन्य, न उससे बड़ा कृतघ्न कि अन्य।(2)

कवि की दृष्टि में पुरुष मैत्री की मर्यादा का भंजक रहा है, जबकि स्त्री मैत्री–स्थापन में प्रमुख भूमिका निभाती है। पुरुष उस पर संदेह तथा लांछन–प्रवाह प्रचारित करता है, जबकि स्त्री सहनशीलता की एक सीमा तक प्रतिवाद से प्रायः पृथक रहती है। यों प्राचीन काल से ही नारियों को पुरुष की मुख्य शक्ति के रूप में चित्रित करने के पीछे भी एक कारण उसकी यह सहनशक्ति भी है। कवि लिखते हैं :

"पुरुष तोड़कर मर्यादा मैत्री की, नर–नारी को
यदि करते रह जायें स्वैरिता, चाहे जो भी, जी की
औ' संदेह–कथा गढ़, नारीजन पर रचें प्रवाद,–
नारी के लांछन–रस का पाने निष्ठुर आस्वाद,
तो, जो सर्वंसहा सीता, हो जाती वही कि काली,
डाल लात छाती पर नर के, नग्न–नृत्य–मतवाली;
तब सतीत्व की नहीं, एक–पत्नी–व्रत की पा दीक्षा,
नर के पौरुष को ही देनी पड़ती अग्नि–परीक्षा।
सीता असती नहीं। एक–पत्नी–व्रत–धारी राम–
कहता जो यह, अग्नि–परीक्षा से भी बड़ा प्रमाण,
जो पर–नारी को पुत्री, भगिनी, माता निज जाने–
उसकी पत्नी सदा सती, यह वचन आप्त, नर माने! [3]

स्त्री–सम्बन्धी डॉ० पाठक के विचार महात्मा गांधी, विनोबा भावे और डॉ. लोहिया के तत्सम्बन्धी विचारों से प्रभावित हैं। आचार्य विनोबा भावे ने 'तीसरी शक्ति' में लिखा है कि हिंसा में जिस धृति की जरूरत है, उसमें स्त्रियाँ शायद कम पड़े, वहाँ टिक न सकें, लेकिन अहिंसा में जिस धृति की जरूरत है, मुमकिन है कि पुरुष से स्त्रियाँ कुछ ज्यादा टिकें। [4]

इसी प्रकार डॉ० राममनोहर लोहिया ने पुरुष–समाज द्वारा स्त्री–समाज की समता और स्वतंत्रता के अधिकारों के हरण के सम्बन्ध में 'श्री कृष्ण' नाम्नी अपनी पुस्तिका के पृष्ठ पंद्रह में लिखा है :

"पद्मिनी मीरा की पुरखिन थी। दोनों ही चित्तौर की ही नायिकाएँ हैं। करीब ढाई सौ वर्ष का अन्तर है, दोनों के बीच। कौन बड़ी है, वह पद्मिनी जो जौहर करती है या वह मीरा, जिसे कृष्ण के लिए नाचने से कोई मना नहीं कर सका? पुराने देश की यही प्रतिमा है। बड़ा जमाना देखा है इस हिन्दुस्तान ने। क्या पदमिनी थकती–थकती सैंकडों बरस में मीरा बन जाती है? या मीरा ही पद्मिनी का श्रेष्ठ स्वरूप है? अथवा जब राणा प्रताप आता है, तब, मीरा फिर पद्मिनी बन जाती है और जब देश का पुरुषार्थ और प्रेम, देश के पुरुषों का आलम्बन बनाकर प्रकट नहीं होते, तो पदमिनी ही कृष्ण के विरह में मीरा बनकर घर से बाहर निकल जाती है? हे त्रिकालदर्शी कृष्ण, क्या तुम एक ही में मीरा और पद्मिनी नहीं बना सकते?''

उक्त महापुरुषों के विचारों से प्रभावित डॉ० पाठक भी मानते हैं कि नारी की समता और स्वतंत्रता के अधिकारों का पुरुष समाज द्वारा लगातार अपहरण, समूची दुनिया के मानव समाज की दृष्टि में इतना स्वाभाविक हो गया है कि नारी में वर्ग चेतना का पनप पाना फिलहाल असंभव है। यही कारण है कि नारी के प्रति पुरुष की क्रूरता को स्वयं नारियों का समर्थन भी प्राप्त हो जाया करता है और नारी–स्वातंत्र्य को पुरुषों की तरह, नारियाँ भी, संदेह की ही दृष्टि से देखती है। इस सम्बन्ध में महाकवि भवभूति की वह उक्ति प्रसिद्ध है जो पुरुष–समाज की दुष्ट शंकालुता द्वारा नारी जाति के स्वत्वापहरण की व्यापक परंपरा पर प्रकाश डालती है। उन्होंने कहा था : 'यथा स्त्रीणां तथा वाचाम् साधुत्वे दुर्जनो जनः।'

समाज की रूचि और बुद्धि की पृष्ठभूमि में जो सामाजिक परंपरा रहती है, वह सबकी स्वाभाविक सुविधा की सीध में नहीं चलती, समाज के दबंग हिस्से की विशेष सुविधा और स्वस्ति की अपेक्षा में ही उसे पीढ़ी–दर–पीढ़ी कायमी बनाकर कभी नियम, कभी औचित्य और कभी रिवाज मान लिया जाता है और वैसी स्थिति मे वह परंपरा इतनी स्वाभाविक और अनुल्लंघनीय हो जाती है कि उसके खिलाफ उस वर्ग के मन में भी दुविधा और विरोध के भाव नहीं जगते, जिस वर्ग के खिलाफ में हिस्सेमारी को अंजाम देने की ही खातिर उस परंपरा को उगाया और जुगाया जाता है। इस सर्व–सहमत अन्याय की गैर–बराबरी को, स्त्री और पुरुष के दो अलग–अलग हकीकी दायरों में बाँटे रखना, मानव–समाज के उन हिस्सों में भी पूरे तौर पर खत्म नहीं हुआ है, जो हिस्से, सभ्यता, आजादी या बराबरी के मामले में, अपने को, और हिस्सों के बजाय, ज्यादा चौरस और चौकोर मानते हैं।

नारियों की वर्तमान दुःस्थिति के कारणों पर विचार करते हुए उन्होंने माना है कि पुरुष कुदरती तौर पर भी और समाज–सम्मत हिस्सेमारी के लिहाज से भी, स्त्रियों से ज्यादा दबंग और अधिक सुविधा सम्पन्न बने रहने की आदी हैं। इसीलिए, विशेषाधिकार देकर, समाज के दब्बू हिस्से को शोख बनाने की खातिर, अगर दबंग हिस्से को उदार, सहिष्ण और त्यागी बनाने की परिस्थिति, आरक्षण के द्वारा पैदा करने की जरूरत, सामाजिक समता और प्रजातांत्रिक न्याय के हिसाब से, जाहिर हो गई हो, तो सवर्ण हिन्दुओं को शेष लोगों के प्रति जो रूख अपनाना चाहिए, नारियों के प्रति पुरुष–समाज को उससे भी अधिक मुलायम और उदार रूख अपनाना होगा। नारियों के खिलाफ हिस्सेमारी का रुख अपनाने वाले पुरुष नेताओं ने, पिछड़े वर्ग के प्रवक्ता की अपनी हैसियत को अपने आचरण के द्वारा जिस तरह खण्डित किया है, उसी तरह, राजनेतृ–वर्ग की उन नारियों ने भी, जिन्होंने अपने को सत्ता सम्पन्न बनाये रखने की खातिर नारी जाति के दबे हुए हिस्सों को दबाये रखने का औचित्य, अपनी मर्दानी हरकतों के आस्फालनों के द्वारा भी प्रमाणित किया है और उक्त वक्त के पुरुष नेताओं की हिस्सेमार माँगों को अपनी स्वस्ति और समर्थन देकर भी। हकीकत यही है कि नारी–स्वातंत्र्य के प्रसंग में सामाजिक विघटन और नैतिक उत्पात की तमाम आशंकाएँ, केवल ऐसी ही नारियों के आचरणों से जुड़ी हैं, जिनकी तायदाद दाल में नमक के बराबर भी नहीं है, मगर जो मर्दों की अपेक्षा कहीं ज्यादा मर्दानगी, धौंस, शोखी और शान के साथ, देश की नैतिकता और पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्यों को रौंदकर, महत्त्वपूर्ण हो गयी हैं और अपनी हरकतों के जरिये भारत के नारी समाज के मुँह पर कालिख पोत रही हैं। [5]

डॉ. राममनोहर लोहिया ने 'जातिप्रथा' शीर्षक अपनी पुस्तिका के पाँचवें और छठे पृष्ठ पर भी स्त्री–सम्बन्धी अपने विचार प्रकट किये हैं एवं आधुनिक सभ्यता के भारतीय प्रसंग से स्त्री–पुरुष–समता की एक नैतिक कसौटी प्रस्तुत की है, जिसका उद्देश्य उछृंखल आचरण का प्रतिपादन नहीं, स्वाभाविक दुर्बलताओं या स्खलनों की क्षम्यता का सीमा निर्धारण मात्र है।

डॉ० पाठक के जीवन–सर्वस्व पथ–प्रदर्शक परमपूज्य पंडित रामनन्दन मिश्रजी भी गांधी और लोहिया के समान स्त्री को समता और स्वतंत्रता देने के प्रबल समर्थक थे। गांधी के परदा–विरोधी आंदोलन के प्रसंग से अपने पूज्य पिता पंडित श्री राजेन्द्र मिश्रजी को 07–12–1927 को लिखे अपने पत्र में उन्होंने लिखा था :

''पर्दा रखना किसी धर्म का अंग नहीं और पर्दा तोड़ने से पाप

होगा, यह कोई नहीं कह सकता। केवल प्राचीन प्रथा के कारण स्त्री–जाति के उत्कर्ष का पथ रोकना मैं उचित नहीं मानता.... मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि स्त्री व्यभिचारणी हो जाय यह भी सह्य है, पर उसे पर्दे में रखना ठीक नहीं। इस पर मेरा विश्वास अटल है, बदलनेवाला नहीं।[6]

उक्त तीनों महापुरुषों और विचारकों की स्त्री–विषयक धारणाओं का अभिप्राय डॉ0 पाठक ने अन्ततः यही निकाला है कि भारत के वैदिक गणतंत्रों ने चार पुरुषार्थों को चार आश्रमों से जोड़कर नर–नारी की समता और स्वतंत्रता को समाजोपयोगी सीमा के भीतर चरितार्थ करना चाहा था। आधुनिक शिष्टाचार और आदिम स्वभाव के बीच का वह रिश्ता, समाजवादी व्यवस्था को कभी–न–कभी ढूँढ़ना ही होगा, जो एक ओर यथेच्छाचारी कामुकता को और दूसरी ओर अग्निपरीक्षा और बुरकापोशी को समान रूप से विसंगत ठहरा सके, तथा हमें, अपनेतई संयमी और सावधान तथा दूसरों के प्रति उदार, सहिष्णु, अनिन्दक, अपीड़क और अशंक बना सके। उसी प्रसंग में पाश्चात्य नग्नता–गोष्ठियों की असभ्य सभ्यता, लिंगातीत आध्यात्मिक बोध की असाधारण साधना एवं प्राकृत आदिम अवस्था की अपाप–विद्ध मुक्त मिथुनता के अंतर पर दृष्टि रखकर, हम उन औपचारिकताओं के प्रति उदासीन हो सकेंगे, जो औपचारिकताएँ, पुरुष–शासित व्यवस्था ने नारियों को पुरुषों से हीन ठहराने की खातिर रची है। इस प्रकार डॉ० पाठक के नारी–विषयक विचार अत्यन्त युगानुरूप और समतामूलक हैं।

निष्कर्ष

'सर्वसहा' डॉ० रमाकान्त पाठक द्वारा लिखित एक आत्मसंभाषात्मक काव्य है। यह सीता के चरित्र पर आधारित कृति है। सीता 'सर्वसहा' है अर्थात् सब–कुछ सहनेवाली है। सीता के रूप में कवि ने भारतीय नारियों के सब–कुछ सहनेवाले चरित्र और संस्कार का वर्णन किया है।

हिन्दी–राम–काव्य की परम्परा को समृद्ध करनेवाली आधुनिक युग की यह कृति कवि की उस नारी–दृष्टि को उजागर करती है, जो गाँधी, विनोबा और राम मनोहर लोहिया के नारी–विषयक विचारों से अनुप्राणित है। उक्त महापुरुषों की तरह कवि ने भी माना है कि नारियों के प्रति भेद–भाववाली दृष्टि सामाजिक और सामन्ती व्यवस्था की उपज है, अन्यथा नारी पुरुष की तुलना में सदा श्रेष्ठ रही है। भारत के वैदिक गणतंत्रों ने चार पुरुषार्थों को चार आश्रमों से जोड़कर नर और नारी की समता और स्वतंत्रता को समाजोपयोगी सीमा के भीतर चरितार्थ करना चाहा था। आधुनिक शिष्टाचार और आदिम स्वभाव के बीच का वह रिश्ता, समाजवादी व्यवस्था को कभी–न–कभी ढूँढ़ना ही होगा, जो एक ओर यथेच्छाचारी कामुकता को और दूसरी ओर अग्निपरीक्षा और बुरकापोशी को समान रूप से विसंगत ठहरा सके, तथा हमें अपनेतई संयमी और सावधान तथा दूसरों के प्रति उदार, सहिष्णु अनिन्दक, अपीड़क और अशंक बना सके।

संदर्भ :

1. डॉ० रमाकान्त पाठक : 'सर्वसहा', भारती भवन, पटना, पृ0 42–43
2. उपरिवत्, पृ0 43–44
3. उपरिवत्, पृ0 44
4. आचार्य विनोबा भावे : तीसरी शक्ति, सं0–1969, पृ0 176
5. डॉ० रमाकान्त पाठक : ईशपुत्र, निवेदन, पृ0 173 से उद्धृत
6. उपरिवत्, पृ0 176–177